साहेब के 59 मिनट में क़र्ज़ का आधे घंटे में किसान खुदकुशी और 15 मिनट में रेप से रिश्ता !

पुण्य प्रसून वाजपेयी

प्रधानमंत्री ने जैसे ही एलान किया कि अब छोटे व मझोले उद्योगों [एमएसएमई] को 59 मिनट में एक करोड़ तक का कर्ज मिल जायेगा, वैसे ही एक सवाल ज़हन में आया कि देश में एक घंटे से कम में क्या क्या हो जाता है? सरकारी आंकडों को देखने लगा तो सामने आया कि हर आंधे घंटे में एक किसान खुदकुशी कर लेता है। हर 15 मिनट में एक बलात्कार हो जाता है। हर सात मिनट में एक मौत सड़क हादसे में हो जाती है। हर मिनट प्रदूषण से 4 से ज्यादा मौत हो जाती है। दूषित पानी पीने से हर दो मिनट में एक मौत होती है। इलाज न मिल पाने की वजह से हर पाँच मिनट में एक मौत हो जाती है। हर बीस में किसी एक के डूबने से मौत हो जाती है। आग लगने से हर तीस मिनट में एक मौत हो जाती है। हर बीस मिनट में तो जहर से भी एक मौत होती है। हर 12 वें मिनट दलित उत्पीड़न की एक घटना होती है। हर तीसरे सेकेंड महिला से छेड़छाड़ होती है। यानी एक घंटे से कम 59 मिनट में एक करोड़ का लोन, आकर्षित करने से ज्यादा त्रासदीदायक इसलिये लगता है क्योंकि पटरी से उतरे देश में कौन सा रास्ता देश को पटरी पर लाने के लिए होना चाहिए, उस दिशा में ना कोई सोचने को तैयार है ना ही किसी के पास पालिटिकल विजन है।

यानी सत्ता चौंकाती है। सत्ता अपनी तरफ ध्यान आकर्षित करना चाहती है। सत्ता अपने होने के एहसास को जनता पर लादना चाहती है। जनता कभी इस हाथ कभी उस हाथ लुटे के सियासी रास्ते बनाने में ही पांच बरस गुजार देती है। और ये बरसों बरस से हो रहा है। तो निराशा होगी। ऐसे में मौजूदा सत्ता ने निराशा और आशा के बीच उस कील को ठोंकना शुरु किया है जिसमें राजनीतिक सत्ता पाने के तौर तरीके पारंपरिक ही रहे । लेकिन सत्ता के तौर तरीके अपने तंत्र को ही राष्ट्रीय तंत्र बना दे।

यानी सवाल ये नहीं है कि 59 मिनट में एक करोड़ का लोन मिल जाये। कानून बनाकर भीड तंत्र पर नकेल कसने की बात की जाये। रिजर्व बैक को राजनीतिक तौर पर अमल में लाने के लिये पुरानी विश्व बैंक या आईएमएफ

की धारा को बदलने की जरुरत बताने की कोशिश की जाये। पुलिस-जांच एंजेसी की अराजकता को उभार कर सत्ता नकेल कसने के लोकप्रिय अंदाज को अपना ले। तो क्या ये रास्ता उस संघर्ष की दिशा में जा रहा है, जहां जनता को राहत के लिये राजनीतिक सत्ता की तरफ ही देखना पड़े और सत्ता पहले की तुलना में कहीं ज्यादा ताकतवर हो जाये। यानी चुनावी लोकतंत्र ही हिन्दुत्व हो। वही समाजवाद हो। वही विकास का प्रतीक हो। वही सेक्यूलर हो। वही सबका साथ सबका विकास का जिक्र करे। पहली सोच में ये असंभव सा लग सकता है लेकिन सत्ता के तौर तरीकों से ही समझे तो इस धारा को समझने में मुश्किल नहीं होगी।

याद कीजिये मोदी सरकार का पहला बजट। कारपोरेट/उद्योगों के लिये रास्ता खोलता बजट। भाषण देते वक्त वित मंत्री ये कहने से नहीं चूकते कि कॉरपोरेट और इंडस्ट्री के पास धंधा करने का अनुकुल रास्ता बनेगा तो ही किसान- मजदूरों के लिये उनके जरिए पूंजी निकलेगी। फिर दूसरा बजट जिसमें उद्योग और खेती में बैलेंस बनाने की बात होती है। लेकिन खेती को फिर भी कल्याण योजनाओ से ही जोड़ा जाता है। और तीसरे बजट में अचानक किसानों की याद कुछ ऐसी आती है कि कॉरपोरेट और इंडस्ट्री से इतर एनपीए का घड़ा यूपीए सरकार के माथे फोड कर मुश्किल हालात बताये जाते हैं। और चौथे बजट में मोदी सरकार किसानों की मुरीद हो जाती है और लगता है कि देश में चीन की तरफ कृषि क्रांति की तैयारी मोदी सरकार कर रही है।

लेकिन बजट के बाद सभी को समझ में आ जाता है कि सरकार का खजाना खाली हो चुका है। इकोनॉमी डाँवाडोल है। और पांचवे बरस सिर्फ बात बनाकर ही जनता को मई 2019 तक ले जाना है। यानी बजट भाषण और बजट में अलग-अलग मद में दिये गये रुपयों की बाबत ही कोई पढ़ ले तो समझ जायेगा कि 2014 में जो सोचा जा रहा था वह 2018 में कैसे बिलकुल उलट गया। तो ऐसे में फिर लौटिये 59 मिनट में एक करोड़ तक के लोन पर । संघ के करीबी गुरुमूर्ति ने रिजर्व बैंक का डायरेक्टर बनने के बाद बैंकों की कर्ज देने की पूर्व और पारंपरिक नीति को सिर्फ इस आधार पर बदल दिया कि कॉरोपरेट और उद्योगपति अगर कर्ज लेकर नहीं लौटाते हैं तो फिर छोटे और मझोले इंडस्ट्री को भी ये हक मिलना चाहिये। यानी देश में उत्पादन ठप पडा है। नोटबंदी के बाद 50 लाख से ज्यादा छोटे-मझोले उघोग बंद हो गया। अंसगठित क्षेत्र के 25 करोड़ लोगों पर सीधा तो 22 करोड़ लोगों पर अप्रत्यक्ष तौर पर कुप्रभाव पडा। यानी एक करोड के कर्ज को इसलिये बांटने का प्रवधान बनाया जा रहा है जिससे देश की लूट में हिस्सेदारी हर किसी को हो। ये हिस्सेदारी जनधन से शुरु होकर स्टार्ट-अप तक जाती है। यानी बैंकों से मोदी नीति के नाम पर रुपया निकल रहा है लेकिन वह रुपया न तो वापस लौटेगा और ना ही उस रुपये से कोई इंडस्ट्री, कोई उद्योग, कोई स्टार्ट-अप शुरु हो पायेगा। बेरोजगारी और ठप इकोनॉमी में राहत के लिये बैंकों को बताया जा रहा है कि सभी को रुपया बाँटो ताकि जनता गुस्सा ना हो। और जिसमें गुस्सा हो उसे दबाने के लिये मोदी नीति से राहत पाया शख्स ही बोले ।

यानी आर्थिक नीति कौन सी है? स्वायत्त संस्थाओ का काम क्या है? क्योकि कानून के दायरे में काम होता नहीं और जहाँ कानून है वहाँ भीडतंत्र काम करते हुये नजर आता है। ऐसा नहीं है कि सारी गड़बड़ी मोदी सत्ता के वक्त ही हुई। लेकिन पारंपरिक गड़बड़ियों के आसरे ही सत्ता अगर देश चलाने लगेगी तो फिर गड़बडियाँ या अराजक हालात ही गवर्नेंस कहलायेगी। ध्यान दीजिये, हो यही रहा है। सीबीआई के लिये कोई कानून है ही नही। कांग्रेस ने सीबीआई के जरीये काम कराये तो मोदी सत्ता खुद ही सीबीआई बन गई। रिजर्व बैंक की नीति को मंनमोहन सिंह के दौर में आवारा पूंजी के साथ खड़े होने की खुली छूट दी गई। कारोपरेट लूट को हवा मनमोहन सिंह के दौर में बाखूबी मिली। लेकिन मोदी सत्ता के दौर में सत्ता ही कारपोरेट हो गई । यानी कल तक जिन माध्यम के आसरे सत्ता निरकुंश होती थी या मनमानी करती थी, वह आज खुद ही ऐसा करने का माध्यम बन रही है। ? ठीक वैसा ही है जैसे कभी करप्ट और अपराधियों के आसरे सत्ता में आया जाता था। पर धीरे धीरे करप्ट और आपराधिक तत्व चुनाव लड़ जीतने लगे और खुद ही सत्ता बन गये।

तभी तो देश में कानून या नीतियां बनती कैसे हैं, उसका एक नजारा ये भी है कि दिल्ली की निर्भया रेप कांड के बाद कड़ा कानून बना लेकिन बरस दर बरस रेप बढ़ते गये। 2013 में [निर्भया कांड का बरस] 33,707 रेप हुये तो 2017 में बढते बढते यह संख्या चालीस हजार पार कर गई। इसी तरह शिक्षा के अधिकार पर कानून। भोजन के अधिकार पर कानून , दलित अत्याचार रोकने पर कानून से लेकर 34 क्षेत्र के लिये बीते 10 बरस यानी 2009 के बाद कानून बने । लेकिन कानून बनने के बाद घटनाओ में तेजी आ गई । ज्यादा बच्चे स्कूल छोडने लगे। आलम ये है कि स्कूलो में दाखिला लेने वाले 18 करोड़ बच्चों में से सिर्फ 1 करोड़ 44 लाख बच्चे ही बारहवीं की परीक्षा दे पाते है। दो जून की रोटी के लाले ज्यादा पड़े। हालात ये हैं कि 20 करोड लोगों तक 2013 में बना भोजन का अधिकार पहुंच ही नहीं पाया है। यहाँ तक कि मनरेगा का काम भी गायब होने लगा। तो फिर इस कड़ी में कोई भी ये सवाल भी कर सकता है कि जब गवर्नेंस गायब है पॉलिसी पैरालाइसिस है। या सबकुछ है और सबकुछ का मतलब ही सत्ता है तो फिर ?

तो फिर का मतलब यही है कि सत्ता पर निगरानी के लिये लोकपाल और लोकायुक्त कानून भी 16 जनवरी 2014 को बना था और उसके बाद सत्ता तो नहीं लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने अलग अलग तरीके से पांच बार सत्ता से पूछा, लोकपाल का क्या हुआ। और सुप्रीम कोर्ट के तेवर और सत्ता की मस्ती देखिये । सुप्रीम कोर्ट 23 नवंबर 2016 को कहता है लोकपाल की नियुक्ति में देरी क्या है?

फिर 7 दिसबंर 2016 को पूछता है लोकपाल की नियुक्ति के लिये अब तक क्या हुआ ? फिर 27 अप्रैल 2017 को निर्देश देता है, लोकपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया को अटकाया ना जाये। उसके बाद 17 अप्रैल 2018 को कहता है कि लोकपाल की नियुक्ति जल्द से जल्द हो। और 2 जुलाई 2018 को तो सीधे कहता है- 10 दिन में बताए कि कब तक बनेगा लोकपाल ? और 2 जुलाई के बाद देश में स्वायत्त संस्था से लेकर सुप्रीम कोर्ट में क्या क्या हुआ ये किसी से छिपा नहीं है। यानी संकेत साफ है, जब सत्ता संविधान की व्याख्या करने वाले सुप्रीम कोर्ट को टरका सकती है और खुद को ही सीबीआई, सीवीसी, रिजर्व बैंक से लेकर चुनाव आयोग में तब्दील कर सकती है, तो उसमें आपकी क्या बिसात ?

जी.डी. अग्रवाल की मृत्युः मोदी के नमामि गंगे प्रहसन का पर्दाफाश

इन्द्रेश मखूरी

11 अक्टूबर को हरिद्वार में गंगा की अविरलता के लिए अनशनरत प्रो.जी. डी. अग्रवाल का 86 वर्ष की उम्र में निधन हो गया. वे 111 दिन से अनशनरत थे और एक दिन पहले पानी पीना भी छोड़ चुके थे. 2011 में सन्यास लेने के बाद स्वामी ज्ञानस्वरूप सानंद के नाम से जाने गए जी.डी.अग्रवाल गंगा की अविरलता के लिए अनशन कर रहे थे.

एक सरकार जो गंगा के नाम पर नमामी गंगे जैसी योजना चलाती है, उसी के राज में एक पूर्व प्रोफेसर जो सन्यासी हो चुका है, गंगा स्वच्छता के लिए मांग करते हुए उसकी जान चली जाती है, यह बेहद विचित्र है. आश्चर्यजनक यह भी है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को उन्होने तीन पत्र लिखे, जिन में से एक का भी जवाब नहीं आया. ट्विटर पर एक क्रिकेटर के सेहत की चुनौती को कबूल करने के लिए लंबा वीडियो शूट करने वाले प्रधानमंत्री के पास अनशन पर बैठे एक 86 साल के बुजुर्ग प्रोफेसर के तीन पत्रों में से एक का भी जवाब देने की फुर्सत ही नहीं हुई!

शुरू में मोदी पर अग्रवाल को काफी भरोसा था, इसलिए इस वर्ष 24 फरवरी और 23 जून को लिखे पत्रों में वे मोदी को अपने छोटे भाई के तौर पर संबोधित करते हैं. लेकिन जिसे अग्रवाल अपना छोटा भाई समझ रहे थे, उस भाई ने न तो उनके एक पत्र का जवाब दिया, न ही उनका जीवन बचाने का कोई प्रयास किया.

और वे मांग क्या रहे थे, यह 5 अगस्त को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को लिखे अंतिम पत्र में उन्होने दोहराया-

1. गंगा संरक्षण एवं प्रबंधन अधिनियम पारित किया जाये
2. गंगा और उसकी सहायक नदियों पर बनने वाली सभी जल विद्युत परियोजनाओं पर रोक लगे
3. हरिद्वार और कुम्भ क्षेत्र में खनन पर रोक लगे
4. गंगा भक्त परिषद का गठन हो,जो गंगा के हित में काम करे

इसी पत्र में वे मोदी से जगी उम्मीद और उनके कार्यों के प्रति निराशा को भी प्रकट करते हैं. वे लिखते हैं कि 2014 के चुनावों में जब मोदी ने कहा कि गंगा ने उन्हें बुलाया है तो उन्हें(अग्रवाल को) आस जगी थी कि गंगा के लिए मोदी जरूर कुछ करेंगे. लेकिन मोदी के कार्यों से निराशा जाहिर करते हुए अग्रवाल लिखते हैं कि बीते चार सालों में मोदी की सरकार ने गंगा से केवल लाभ कमाने और कारपोरेट घरानों को फायदा पहुंचाने का काम ही किया है.

गंगा की सफाई के लिए गाल बजाने वाली सरकार में भगवा वस्त्र धारी एक प्रोफेसर 111 दिन तक भूख हड़ताल पर रहता है और उत्तराखंड तथा देश में भाजपा की प्रचंड बहुमत वाली सरकार होने के बावजूद कोई सुनवाई नहीं होती है तो इस सरकार के गंगा प्रेम की असलियत समझी जा सकती है.

वैसे मोदी सरकार के गंगा प्रेम और गंगा सफाई के दावों की हकीकत भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की रिपोर्ट से भी समझी जा सकती है. कैग की रिपोर्ट कहती है कि 31 मार्च 2017 तक गंगा सफाई कोष में 198.14 करो? रुपये थे, जिनमें से एक भी रुपया खर्च नहीं हुआ था और सारी धनराशि बैंकों में पड़ी हुई थी. कैग की रिपोर्ट कहती है कि सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट का काम बेहद धीमी गति से चल रहा है. मई 2017 तक नदी संरक्षण क्षेत्र ही चिन्हित नहीं किए जा सके थे. कैग के अनुसार अधिकांश काम या तो आधे-अधूरे हैं या शुरू ही नहीं हुए.

एक तथ्य यह भी है कि प्रधानमंत्री मोदी की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय गंगा परिषद की 2016 में गठन के बाद आज तक एक भी बैठक नहीं हुई है. बीस हजार करोड़ रुपये की नमामि गंगे योजना की हकीकत कैग की रिपोर्ट और जीडी अग्रवाल की मृत्यु से स्पष्ट है।

एक प्रश्न यह भी है कि जी.डी. अग्रवाल किसके एजेंडे के लिए लड़ रहे थे? गंगा की अविरलता का उनका एजेंडा दरअसल तो हिंदुवादियों का ही एजेंडा रहा है. गंगा की सफाई और उस पर जलविद्युत परियोजनाओं के विरोध की जो लड़ाई है, उसके कई पहलू हैं. पर्यावरणीय कारणों से जल विद्युत परियोजनाओं का विरोध किया जाता रहा है, स्थानीय लोगों का संसाधनों पर अधिकार खत्म करने और उनके विस्थापन के खिलाफ भी इन परियोजनाओं का विरोध किया जाता रहा है. इसका अलावा जो तीसरा विरोध का कारण है, वो हिन्दू धर्म के नजरिए से है, जो पर्यावरणीय पहलुओं से ज्यादा धार्मिक वजहों से गंगा की अविरलता यानि उसके निर्बाद्ध बहाव पर तोर देता है और इसलिए जल विद्युत परियोजनाओं की खिलाफत करता है.

जी. डी. अग्रवाल इसी अविरलता वाले नजरिए से गंगा स्वच्छता और परियोजनाओं के विरोध की बात कर रहे थे. इस तरह देखें तो वे हिंदुवादी एजेंडे को ही आगे बढ़ा रहे थे.उनके सारे अनशनों को देखें तो उसमें लोगों के संसाधनों पर अधिकार और विस्थापन की बात नहीं सुनाई देगी,पर्यावरणीय दुष्प्रभावों की बात भी उसमें गौण है. उनके सारे विरोध का आधार हिंदुवादी नजरिए ही है,जिसमें वे निरंतर गंगा की अविरलता पर गोर देते हैं. हिंदुवादी उन्माद के प्रतिनिधियों वाली सरकार में उनके एजेंडे पर चलने वाला व्यक्ति भी अनशन करते मर गया तो फिर बचेगा कौन? जी. डी. अग्रवाल हों या कोई साधारण नागरिक, सबके जीवन की रक्षा करना,सरकार का संवैधानिक दायित्व है. निश्चित ही प्रो. जी. डी. अग्रवाल की मृत्यु दुखद और मोदी सरकार के क्रूर, आलोकतांत्रिक और तानाशाही चेहरे को दिखाती है. यह सरकार इतनी अहंकारी है कि अपनी ही धारा के एक सन्यासी की मौत से भी उसे कोई फर्क नहीं पड़ता.लेकिन साथ यह भी समझना होगा कि गंगा या किसी भी नदी के बने और बचे रहने की जरूरत सिर्फ धार्मिक कारणों के लिए नहीं है.

इन नदियों के किनारे बसने वाली और इन पर निर्भर बढ़ी आबादी की जीवन रेखा हैं,ये नदियों. इन नदियों पर पहला अधिकार न तो किसी कारपोरेट का हो सकता है, ना ही धार्मिकता इतनी बढ़ी हो सकती है कि उसके सामने लोगों का जीवन और उनके अधिकार चर्चा का विषय ही न बनें. खेती,जमीन,मनुष्य सब डूब जाये,लेकिन मंदिर बचा रहे,जल विद्युत परियोजनाओं के खिलाफ आंदोलनों के इस तर्क से मनुष्य उतना ही गायब है,जितना सब कुछ डुबो देने वाला बढ़ी-बढ़ी जल विद्युत परियोजनाओं वाले विकास के मॉडल से.